उपसंहार।
उपसंहार।

उपन्यास, समग्र परिवेशों में फैलकर देश और काल की प्रामाणिक
- चेतना से पाठकीय संवेदना को झकझोर देता है। समय और समाज की
समस्याओं, आकृतियों, चुनौतियों, अंतर्विरोधों, विसंगतियों और आधुनिक
समाज की जटिलताओं को व्यक्त करने के लिए उपन्यास से भिन्न सफल
और समय माध्यम, आज दूसरा नहीं है। हिन्दी का समकालीन उपन्यास
- साहित्य, व्यक्ति के माध्यम से समय और समाज की हालत को सामने
लाया। दुनिया भर के मानव समाज के सामने एक अहम सवाल बनकर
खड़े विश्वासपति के दर्द को चित्रित करने वाले उपन्यास, समकालीन हिन्दी
उपन्यास की एक नवीन प्रवृत्ति है।

मानव के ऐतिहासिक विश्वासपति का आरंभ दस लाख वर्ष पूर्व से
हुआ और उपनिवेशवाद और औद्योगिकरण से इस प्रवृत्ति में अधिक वृद्धि
आयी। साम्राज्य की विपुलता के लिए शुरु हुए विश्वासपति ने कालांतर में
स्वेच्छापूर्वक, प्रेरित और विश्वसित विश्वासपति को जन्म दे दिया। युद्ध और
राजनीतिक कारणों से बीसवीं शताब्दी में विश्वासपति बढ़ गया, द्वितीय
विश्वयुद्ध के बाद दुनिया भर में विश्वासपति के नये अध्याय जोड़े गए। राष्ट्रों
के विभाजन ने मानव जाति के भारी विश्वासपति को जन्म दे दिया।
विस्थापन, दुनिया भर के लोगों से सुरक्षा के एहसास को छीन ले गया।
लोग उस वातावरण से बेघर हुए जो उन्हें अस्तित्व का एहसास कराता था।

जीवन में सुअवसर प्राप्त करने के लिए लोगों ने नए राष्ट्रों व प्रदेशों
की ओर प्रस्थान किया। परन्तु भारी सांस्कृतिक अंतर के रहते विस्थापित
लोग नए देश में हमेशा अविचित के रूप में रह जाते हैं। भीड़ में अकेले
रहने के लिए अभिषेक प्रवासी भारतीय समस्त सुविधाओं के बीच में रहते
हुए भी जीवनभर परावर्तन के एहसास को भोगते रहते हैं। राष्ट्र विभाजन
से जुड़े विस्थापन में छिपी अनिश्चितता और भय से मुक्त होना सहज न
होने के कारण लोगों पर इसकी काली छाया जीवनभर पड़ी रहती है।
भौगोलिक विस्थापन को प्रोत्साहित करने में भूमिलकरण की बहुत ही
महत्वपूर्ण भूमिका है। अंतरराष्ट्रीय समाजों के आगमन के चलते अनेक
स्थानीय लोगों को विस्थापन का दर्द सहना पड़ रहा है।

अपने जनमस्थान और निवास - स्थान छोड़कर एक नये स्थान की
तरफ़ गमन करने की प्रक्रिया ही विस्थापन है। इससे संबंधित व्यक्तियों
के जीवन के समस्त पक्षों को विस्थापन जीवनपर्याय संभावित करता है।
अपनी इच्छा से लोग विस्थापित होते हैं, साथ में मजबूतीवश या बलपूर्वक
भी विस्थापन घटित होते हैं। आर्थिक सुरक्षा के लिए हो रहे प्रवासन,
विस्थापन का एक प्रमुख रूप है। नये वातावरण में पहुँचने पर व्यक्ति की
मान्यताएँ बदलने लगती हैं, सांस्कृतिक टकराहट उत्पन्न होती है। लोग
नये परिवेश के घुटन - भरे माहील में जीने के लिए विवश हो जाते हैं।

विश्वासन, एक सीमा को पार करने का एकमात्र कार्य नहीं है बल्कि यह अन्य मानव-जीवन के समस्त पक्षों को जीवनपर्यंत प्रभावित करता रहता है। जीवन की प्रगति के साथ-साथ विश्वासन के मूल अर्थ में भी बदलाव आया है। अपनी इच्छा से लोग एक स्थान से विश्वासित होते हैं, साथ में मजबूरीवश या बलपूर्वक भी विश्वासित हो जाते हैं। विश्वासन करने के लिए मजबूर हुए लोगों की अवस्था बहुत चिंतित है। अपने देश या मिट्ठी से बलपूर्वक निकालने से लोग मानसिक रूप से दूर जाते हैं और दूसरी जगह पर रहते हुए भी उनके मन में हमेशा मूल मिट्ठी की यादें ताज़ी रहती हैं और वे यहाँ लौट जाने के लिए तरसते रहते हैं।

विश्वासन के रूप में प्रमुख है प्रवजन या प्रेरणगमन यानी एक देश से दूसरे देश में जाकर बसना। यह विश्व-जगती कार्यकलाप है जिसके पीछे सर्वथा आर्थिक कारण रहे हैं। लोग अपने घर-परिवार, देश और मिट्ठी से मजबूर अलग होकर एक अन्य देश और परिवेश में बसा जाता है। माहील बदल जाने से ज्यादातर लोगों की जिंदगी में उलझन मिलता है। एक राष्ट्र के विभाजन से होनेवाले प्रवजन भी मजबूरी में रहते हैं। अपने देश से मजबूर निकाले गये लोग कुछ समय के बाद नए वातावरण से समझौता तो कर लेते हैं फिर भी उनके दिलों में अपनी मिट्ठी की यादें ताज़ी रहती हैं। अपने पर्यावरण और इसके से लोगों का बलपूर्वक पलायन, विश्वासन के नवीन एवं प्रचलित रूप है।
विकास योजनाएँ एवं प्रक्रियाओं से बहुत से लोग विस्थापित हो जाते हैं। आंतरिक रूप से विस्थापित हुए लोगों की संख्या में आयी वृद्धि, आज की एक प्रमुख चुनौती है। ऐसे लोग शरणार्थियों के सामने होते हुए भी किसी अंतर्राष्ट्रीय सीमा को पार न करने के कारण किसी भी अंतर्राष्ट्रीय योजना की सुरक्षा के हकदार नहीं होते।

विस्थापन, एक कारूणिक परिघटना के रूप में दुनियाभर में गरीबी का विषय है। आजकल यह साहित्य का भी ज्वलंत विषय बन गया है। समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने विस्थापन से जुड़ी समस्याएँ और उसके विविध रूपों के निमित्त समाज पर हो रहे उनके व्यक्तिगत प्रभावों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया।

प्रवासी भारतीयों की द्वितीय मन: स्थिति को अनेक समकालीन उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं का विषय बनाया। ये उपन्यास, क्षणिक और अर्थहीन रिश्ते एवं अजनबीयन की मानसिकता से ग्रस्त हर संबंध की वास्तविकता का यथार्थ चित्रण करते हैं। उपन्यास के अंतर्गत भारत में हजारों मजदूरों को ‘गिरिजिति’ बनाकर ले गयी और अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए संघर्ष किए थे ये लोग भारतीय विस्थापितों की पहली पीढ़ी है। विदेशों में इन भारतीय मजदूरों की एहसास ‘गंगे कीड़े’ से अधिक न थी। 1950 के बाद, उच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा जीविकपोषण के लिए विदेश पहुँचे भारतीय, नस्लवाद और रंगमंडल का शिकार बन गये। प्रवासी भारतीय के समुक्ष साँस्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक और यहाँ
तक कि नैतिक मूल्यों को लेकर भी बहुत दुःखियाँ आयी जो मानसिक दृष्टि का कारण बन गया। ज्यादातर भारतीय प्रवासी, हालात से समझौता कर लेते हैं। अपने अंदर एक 'लघुभारत' बसाकर जीनेवाले भारतीय लोगों के सामने असली संकट तब पैदा होता है जब पाश्चात्य संस्कृति में पली-बड़ी उनकी युवा पीढ़ी उनसे हटकर सोचने लगता है। तभी भारतीय प्रवासियों में सांस्कृतिक दृष्टि का जन्म होता है। विदेशों में रहने के लिए अपने रूपांतर को बदलने के लिए अभिभावक भारतीय हमेशा स्वदेश और विदेश के बीच उलझते रहते हैं। विदेश में अजनबी बनकर रहने के लिए मजबूत भारतीय प्रवासी, अपने देश के बदलते बालवरण में खुद को अजनबी महसूस करने लगते हैं। इस तरह वह हमेशा दो राष्ट्रों एवं संस्कृतियों के बीच पिसता रहता है। दोहरी जिंदगी जीने के लिए विवश हुए प्रवासी भारतीय, तनाव और अलगाव का अनुभव करने लगते हैं। अस्तित्व-संघर्ष से बेहोश हो उठने के परिणामस्वरूप वह शारीरिक तथा मानसिक रूप से विस्थापित हो जाता है।

विभाजन, भारतीय इतिहास की एक बहुत बड़ी त्रासदी है। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र होने के साथ ही अमानवीय कारणों का सिलसिला शुरू हो गया। यह दुर्घटना, लाखों के स्थानांतरण की समस्या से जुड़कर और भी भयावह हो उठी। विस्थापन से निपटने के लिए समुचित योजना के अभाव में लोग बुरी अवस्था में फंस गये। भारत-पाक विभाजन के फलस्वरूप करोड़ों लोग सीमा के दोनों पार विस्थापित हो
गये। विश्व इतिहास में भी यह सबसे बड़ा विस्तापन था। लोग अपने जन्मस्थानों से विस्थापित होकर दिशाहीन पत्तों की तरह चारों ओर बिखर गये। सूर्यदायिक शक्तियों के बरबर तांडव ने मानवीय मूल्यों को ध्वस्त कर लिया। स्वतंत्रता के नाम पर देश को ‘महारक्षन’ करना पड़ा।

विभाजन से शारीरिक रूप में विस्थापित हुए लोग अनेक मुस्लिमों से गुजरकर खुद को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने में सफल हुए। लेकिन विभाजन, भारत के कुछ संग्रहालयों के लिए मानसिक विस्तार का कारण बन गया। विशेषकर मुस्लिमों की स्थिति, विभाजन के बाद अत्यन्त दयनीय बन गयी। मुस्लिम समाज का संपूर्ण अस्तित्व ही विभाजित हो गया था। विभाजन से जुड़े विस्तार के दर्द और ज़मीनदारी व्यवस्था की समाप्ति से उत्पन्न आर्थिक विपत्ता ने भारतीय मुस्लिमों को समाज के हासिले पर रख लिया। उनके ऊपर पड़े शक्र की नज़र एवं हर कदम पर देशप्रेमी होने का प्रमाण देने की नींव ने उन्हें अंतरिक रूप से विस्थापित कर दिया। विभाजन दीखने में ज़मीन का था लेकिन हकीकत में यह घटना अनेक लोगों के विस्तार का कारण बन गया, जिससे उपजी पीड़ा से आज तक भारतवासी मुक्त नहीं हो पाये हैं।

किसी भी जनजाति के लिए, ज़मीन उनकी पहचान और संस्कृति का हिस्सा है। स्वतंत्र भारत के आर्थिक विकास के साथ जनजातियों का विस्तार भी शुरु हुआ। देश के आधुनिकरण के साथ-साथ उनकी ज़मीनें भी उनसे छीनती गयीं। परिणामत: उनकी पुरातात्विक ज़मीनों से वे
विस्थापित होते गये। सरकारी हस्तक्षेप व नीतियों के साथ तथाकथित सभ्य समाज द्वारा उनपर हुए अत्याचार भी उनके विस्थापन का मुख्य कारण बन गया। आंदोलन, सिंचाई परियोजनाएँ तथा अन्य विकास कार्यों के निर्माण के लिए सरकार द्वारा भारी मात्रा में जमीन-अधिग्रहण होने के कारण लाखों लोग विस्थापित बन गये जिनमें जनजातियों की संख्या अधिक है। परिणामस्वरूप, ये लोग समाज की मुख्यधारा के हाथिए पर चले गए। सरकार के नेतृत्व में जनजातियों के समुचित विकास को लेकर लिए गये सरकारी प्रबंधन के बावजूद भी उनकी समस्याओं गंभीर होती जा रही है। भारत के लगभग दो करोड़ जनजाति, विकास कार्यक्रमों का नाम लेकर साहूकार, ठेकेदार, सरकारी अधिकारी वर्ग तथा उद्योगपतियों ने इन जनजातियों का जानलेवा और अमाानवीय शोषण किया है। आजाद भारत में बनाए गए विकास - एज्वडा का भारी असर जंगलों पर पड़ा जिसके कारण जनजातियों को उनके घर जाने से अलग होना पड़ा। अगर इन योजनाओं से सौ लोगों का कल्याण हो रहा है तो लगभग पाँच लोग विस्थापित हो रहे हैं।

विकास के नाम पर अनेक योजनाएँ बनती हैं लेकिन यह सब सरकार और सभ्य समाज के लिए जनजाति समूह को अपने लाभ का माध्यम बनाने का एक छोटा मात्र है। अपनी पैतृक धर्मी से विस्थापित हुए इन लोगों को सरकारी तंत्र ने अपनी बदनीयत योजनाओं से सांकृतिक
विस्थापन के कारण तक पहुँचाया है। उनके संसाधनों का अधिग्रहण और हस्तांतरण इसी तरह जारी रहेगा तो भारत की अतिप्राचीन जनजातियां संभवतः विलुप्त हो जाएँगी। आज देश की राजनीति, जनजाति समूह को मानवीय दृष्टिकोण से नहीं बल्कि अपनी ज़रूरतों को देखते हुए अपने अंदर शामिल कर रही है।

वैज्ञानिक प्रगति की जो थोड़ी-बहुत सुविधा एक राष्ट्र को प्राप्त होती है, उसके लिए देश के सामान्य नागरिक को जो कीमत चुकानी पड़ती है जिसकी कल्पना से हम सिहर उठते हैं। एक औद्योगिक साम्राज्य स्थापित होते ही लोग विस्थापित हो जाने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

विकास, इसान की मूलभूत ज़रूरत है। लेकिन आज की परिस्थिति में विकास एक ऐसा शब्द है जो बहुत विवादास्पद और आतंककारी रूप ले चुका है। बीते पचास-सात वर्षों से विकास परियोजनाओं के नाम पर जिस तरह आबादी विस्थापित हो रही है, वह बाक़ी सीमान की बात है।

विकास के नाम पर विशाल परियोजना में विस्थापन हो जाने के बावजूद सरकार के पास उनके लिए कोई समुचित पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन की नीति नहीं है। विस्थापितों को सरकार पुनर्वास के नाम पर ज़मीन और शुक्ल प्रदान करती है, वह विस्थापितों के जीवन को पुनः बसाने में पर्याप्त नहीं होता।

जब तक देश के आम नागरिकों को साथ लेकर योजनाएं - चाहे
वह देश - विभाजन की हो या देश-विकास की - नहीं बनायी जाएगी तब तक विस्थापन की भीषण छाया भी हमारे देश के ऊपर मंडराली रहेगी। प्रत्येक योजना के कार्यान्वयन के बहुत पहले से ही उससे प्रभावित होनेवाले नागरिकों के पुनर्स्थापन तथा पुनवास के बारे में सोचना प्रत्येक लोकतंत्र का कर्तव्य है। विस्थापित हो रहे जनता के लिए पर्याप्त पुनवास की व्यवस्था करना नामुमकिन है, लेकिन विस्थापितों के लिए आवश्यक पुनर्स्थापित योजनाएँ बनाना सरकार की ज़िम्मेदारी हैं। नागरिकों के आँखों के ऊपर बनाई गई योजनाओं से अधिक महत्व उनकी संतुष्टि पर आधारित योजनाओं को है। जब तक प्रभावित समुदाय के लिए हज़रत पुनवास की योजना नहीं बनेगी तब तक विस्थापन की काली छाया भी समाज में विद्यमान रहेगी।